

## आदिवासियों की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर

Aboriginal Invaluable Cultural heritage of Tribes

डॉ. बी. एल. पवार

समाजशास्त्र विभाग

विजयनगर आर्ट्स कॉलेज

सारोली (उत्तर गुजरात)

### प्रस्तावना :

संस्कृति को समाज का अनमोल दस्तावेज़ या सामाजिक विरासत कहा जाता है। संसार के कई क्षेत्रों में विभिन्न धर्म, जाति, जाति, वर्ग और संस्कृति के मनुष्य प्रारंभ से ही रह रहे हैं, वे प्रदेश के मुताबित अनोखी संस्कृति के तत्वों से अपनी अलग-अलग पहचान बनाते हैं। अर्थात् एक व्यक्ति, समूह और समाज से दूसरे व्यक्ति, गुट और समाज को अलग दर्शानेवाले प्रमुख तत्वों में “ संस्कृति ” हैं।

आदिम संस्कृति अपनी प्राकृतिक परिस्थितियों से बहुत प्रभावित होती है। जैसे वहाँ की लोकबोली, लोकवाध्य, लोकगीत, नृत्य, वेशभूषा आदि मूल कारक प्राकृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं।

अन्य समाजों की तरह आदिवासी समाजों में भी अन्य समाजों और संस्कृतियों के तत्व में संमिश्रित होते जा रहे हैं। संक्षेप में अंधानुकरण की गहरी असर लगभग सभी समाजों तक फैल चुकी है। इन असरों और परिवर्तन के साथ-साथ अपनी पुरानी संस्कृति के मूल धरोहर रीत-रसमों को सलामत रखना आदिम समाजों के लिए पड़कारों से कम तो नहीं कहा जाता। इस विषय संदर्भ में आदिवासियों की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर क्या है का पता लगाना है।

डॉ. बी. एल. पवार

1Page

## अध्ययन की प्रविधि :

प्रस्तुत अध्ययन दक्षिण गुजरात के डांग जिल्ले के आदिवासियों की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर विषय संदर्भ में विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में विशेषतः समाज विज्ञान में की जानेवाली वैज्ञानिक प्रविधियों के आधार स्वरूप सर्वेक्षण, निदर्शन, अवलोकन, मुलाकात अनुसूची और तथ्यों के प्राथमिक और द्वितीयक स्रोत के साथ लाइब्रेरी का उपयोग किया गया है।

## लोकबोली :

‘ Language is the vehicle of Culture ’ भाषा संस्कृति का वाहक है। संस्कृति और इनके सांस्कृतिक तत्व भाषा के माध्यम से प्रसार होकर गतिशील बनते हैं। मानवशास्त्री क्रोबर की दृष्टि से संस्कृति की शुरुआत भाषा के आगमन से हुई है।

उद्भव से ही प्रत्येक समूह-समाज की एक विशिष्ट भाषा या बोली होती है। वे वंशानूगत पीढ़ियों तक आत्मसात चलती रहती हैं। जैसी आदिवासियों की भी विशिष्ट लोकबोली-भाषा है, वह बहुत कम मात्रा में और मर्यादित क्षेत्र में ही इन लोकबोली का प्रयोग होने के कारण भारत सरकारने इन बोलियों को मान्यता प्रदान नहीं की है। लेकिन आदिवासी लोग ज्यादातर अपने प्रदेश में अपनी इन बोलियों के शब्दों में ही अपना व्यवहार-संबंध चलाते हैं। अध्ययन क्षेत्र की आदिम लोकबोली को “ डांगीबोली ” के नाम से पहचाना जाता है। हकीकत में वह डांगीबोली नहीं है, लेकिन इसमें अलग-अलग बोलियों के शब्दों का संमिश्रण पाया जाता है।

आदिम लोकबोली कहीं भी लिखित स्वरूप में नहीं होती। संपर्क क्षेत्र और व्यवहार संबंध मर्यादित होने के कारण विकास की कक्षा प्राथमिक अवस्था में ही पाई जाती है।

वर्तमान समय में आधुनिक शिक्षा की लहर सभी समाजों और वर्गों तक पहुँचाने में सरकारी और गैरसरकारी संगठनों का प्रयास सफल रहा है। साथ में आदिवासी क्षेत्रों-गांवों में बाह्य धर्म और संस्कृति के एजेंट, अधिकारियों का प्रवेश, संचार साधन, वाहन व्यवहार आदि कारकों के प्रभाव स्वरूप कई बदलाव दिखाई दे रहे हैं। परिवर्तन के विशाल फलक पर आदिवासी सभ्य समाजों के संपर्क में आने लगे हैं, जैसे नई शिक्षा पद्धति में दाखिले (उदा. - गुजराती, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि) अलग-अलग अभ्यास भाषाओं के प्रयोग हेतु आदिवासी समाजों में नई पीढ़ी के सदस्य बाह्य समाजों के संपर्क में आते हैं तो जरूरत अधिन भाषाओं का उपयोग करने में सफल रहे हैं। ये नया वलण विकास परिवर्तन दिखाई देता है, शिक्षित नई पीढ़ियों के परिवारों में बच्चों को शुरू से ही माता-पिता को संबोधन स्वरूप मम्मी-पप्पा की उपमा शिखाया जाती है। वैसे रोजबरोज के व्यवहारों में प्रदेश की गुजराती भाषा का ज़्यादातर उपयोग होने लगा है।

नया वर्ग के जन्म के परिणाम स्वरूप अपनी परंपरा से चलती आई लोकबोली खो जाने लगी है, आनेवाले भविष्य में आदिवासी लोगों में अपनी पहचान की लोकबोली का अस्तित्व खतरा से कम तो नहीं होगा।

### लोक वाद्य ( Folk Musical Instruments ) :

मनुष्य जन्म से ही आनंद प्रिय, उत्सव प्रिय प्राणी रहा है। वह फुरसत मिलने पर और, त्यौहारों के दिनों में मौज-मस्ती लुटने अपने प्रदेश और संस्कृति के अधीन तत्पर रहते हैं। परापूर्व से आदिवासियों ने मनोरंजन के कई उपकरणों का निर्माण किया है, इन उपकरणों की विस्तृत चर्चा निम्नांकित है।

### थाली वाद्य :



डॉंग प्रदेश के आदिवासी समाजों में वाध्य का महत्व परंपरा से दिखाई दे रहा है। विशेषतः प्रदेश के आदिवासी लोग धार्मिक विधिविधान में विश्वास करते आए हैं, इस लिए बालक के जन्म के प्रसंग में, खलिहान में फसल कूटने-ओसारने के दिनों में या शाम को देहांत हुए व्यक्ति की रात बिताने के लिए, उनके बारहवें या तेरहवें के प्रसंगों में थाली नामक वाध्य पर कथा-गाने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। प्रसंग के अधीन अपनी लोकबोली में विविध कथाओं की रचना और इनका गान भगत लोग करते हैं, मान्यता के मुताबिक जन्म की कथा परिवार में नये सदस्य के अभिवादन के लिए, खलिहान में वन देवी-देवताओं और अनाज की देवी लक्ष्मी (कनसरा देवी) की प्रसन्नता के लिए तथा देहांत हुये व्यक्ति के आत्मा के शांति के लिए आह्वान करने आदि में यह वाध्य का महत्व आज भी अधिकाधिक दिखाई दे रहा है। आदिम समाज और संस्कृति की एक खास विशेषता यह रही है कि वह अन्य समाजों के संपर्क में आने के बावजूद अपनी पुरानी परंपराओं जुड़ा रहता है।

### थाली वाध्य की रचना :

सामान्यतः थाली शुद्ध पितल धातु की बाजार से खरीदारी का बर्तन है, जिनका आकार छोटा या बड़ा के अलावा मध्यम कद की हो उसे वे उचित मानते हैं। थाली के मध्य में सबसे छोटी मधुमखियों के छतों से निकलनेवाले मोम जंगल के पेड़ों से खोजकर और खास प्रकार के घाँसपूस की तीलियों का प्रयोग करते हैं। थाली को जमीन पर बैठे वादक अपने पैरो पर रखते हैं। थाली में खड़ी की गई तीली (सर) को थाली वादक अपनी कुशलता से ऊपर से नीचे की तरह अपने दोनों हाथों की अंगुली की मदद से खींचता है और जो आवाज निकलती है इन आवाज के साथ अपनी आवाज (सूर) जोड़कर जिस प्रसंग के लिए इकठा होते हैं इस प्रसंग की कथा का वर्णन गीत (सूर-कंठ) में करते हैं। यह इन वाध्य की विशेषता है।

शहनाई :



दक्षिण गुजरात के आदिवासी और खास अध्ययन क्षेत्र में अलग-अलग वाध्यों में से शहनाई को लोकप्रिय वाध माना जाता हैं । शादी-ब्याह ,भवाड़ा, होली और फुरसत के दिनों में आनंद लूटना-नाचना यही तो आदिम समाजों की पहचान हैं । अर्थात शादी-ब्याह हो और शहनाई बजती न हो ऐसा कभी हो ही नहीं सकता । संक्षेप में शहनाई और ढोलक के बिना शादी-ब्याह आदिम समाज में असंभव माना जाता हैं । अन्य प्रदेशों की तरह डांग प्रदेश का प्रचलित पिरामिड नृत्य आज देश और दुनिया के नकशों पर अपने प्रदेश की पहचान बनाने में सफल रहा है ।

शहनाई की रचना :

शहनाई सिसम के पेड़ में से बासुरी की तरह ( छःसात छेद ) आकार में कारीगर (कांतनवाले) की मदद से डिज़ाइन में बनाई जाती हैं । शहनाई के नीचेवाले हिस्से को पितल के छेदवाल हिस्से से जोड़ देते हैं तो ऊपर वाला भाग में ताड़ (खजूरी) की सुके चार पत्ती को धागा में बांधकर जरूरत जितना हिस्सा रखकर बाकी का हिस्सा काट देते हैं ,वे अपने मुंह में रखकर फूंक मारते हैं । सामान्यतः शहनाई छोटी और बड़ी दो आकार की और दो जोड़ी में ही बजाई जाती हैं । जो बड़ी होती है उसी में सिर्फ आवाज होती है और जो छोटी होती है इसमें सूर-गीत के गूंज शब्दों में बजाई जाती हैं । शहनाई के साथ छोटी ढोल सूर-ताल में बजाई जाती है ,ज्यों उपर्युक्त तस्वीर में हैं । शहनाई वादक अपनी कुशलता से अपने लोकबोली में बनाए हुये गाने तो गाते ही हैं ,साथ में हिन्दी फिल्म के गाने भी गाते हैं ,वही उनकी विशेषता कही जाती हैं ।

बदलते समय में शहनाई का महत्व कम होता जा रहा है उनके स्थान पर बैंड पार्टी ,डिजे साउण्ड की बोलबाला का प्रवेश हो रहा है ।

## नगाड़ा :



अध्ययन क्षेत्र में नगाड़ा वाद्य का विशेष महत्व है । यह वाध्य शादी-ब्याह और देहांत ,बारहवे-तेरहवे के प्रसंग में अनिवार्य रूपसे बजाया जाता है । उचित शब्द में कहा जाए तो आदिम परिवारों में शादी-ब्याह हो और नगाड़ा न हो ऐसा हो नहीं सकता । लेकिन नगाड़ा बजाने के ढंग में दो रीत पाई जाती हैं ,पहली रीत शादी-ब्याह में जो संकेत होता है इसमें बीच-बीच में रुककर थाप दिया जाता है । और जब कोई बुजुर्ग का देहांत होता है तब इसमें थाप का संकेत नहीं होता वे संकेत स्थानीय लोगों के लिए संचार की तरह संदेशा का काम करता है ।

## नगाड़ा की रचना :

उपर्युक्त तस्वीर से पता चलता है कि नगाड़ा का नीचेवाला हिस्सा तांबे की धातु में से बनाया जाता है और ऊपर मरे हुये जनावर के चमड़े से चमार के पास मढ़ाया जाता है ,बाजूओं में चमड़े की पट्टिया जो खींचने के लिए होती हैं । नगाड़ा को एक या दो व्यक्ति की मदद से बजाया जाता है ,बजाने के लिए दो लकड़ी का सहारा लिया जाता है । सारे प्रदेश में इस वाध्य का महत्व होने के कारण कुछ सूचनादाताओंने देव नगाड़ा होने की पहचान दी है । नगाड़ा प्रसंग में ही बजाते है कोई फुरसत के समय में इसको बजा नहीं सकते ,यह इसकी विशेषता है ।

वर्तमान में संदेशा के लिए मोबाइल ,टेलीफोन सुविधाए उपलब्ध होने के कारण आसपास के गांवो में रहनेवाले अपने परिवारों को नए तरीकों से संदेश भेजने का शिरस्ता शुरू हुआ हैं ,फिरभि कुछ रूढ़िवादी परिवारों में और शादी-ब्याह में कम मात्रा में लेकिन नगाड़ा का महत्व आवश्यक रूप में आज भी दिखाई दे रहा हैं ।

**पिरि वाध्य :**



सामान्य तौर पर इस वाध्य का उपयोग धार्मिक विधि-विधान के समय ही करते हैं । आदिम समाज धार्मिक भावनाओं और अंधविश्वास में ज्यादा आस्था रखते हैं जब कोई संकट ,मुसीबत आती है तो वे समाधान के लिए भगत-भूवाओं की सलाह लेते हैं ,अर्थात देव-देवियाँ की बाधा लेते हैं । जैसे प्रदेश में डूंगर देव ,भाया ,भवाडा आदि प्रसंगों का महत्व है इस लिए इस वाध्य का उपयोग करते हैं ।

**पिरि वाध्य की रचना :**

कुदरत के सानिध्य में पलने वाले आदिम कुदरती चीजों का ही ज्यादातर अपनी समजदारी से उपयोग करते हैं ,पिरि वाध्य सामान्यतः बांस में से दो बाँसुरी बनाई जाती हैं ,तो नीचे मरे हुये बैल के शिंगे और ऊपर लौकी जोड़ते हैं । जोड़े गए भागो को वे जंगल से खास प्रकार की हनी बनानेवाली मधुमखियों के छतों से निकलनेवाला मोम वह जो मूँह से हवा का कहीं पर छेद न रह जाये इसे चिपका ने के लिए प्रयोग करते हैं । पिरि वाध्य हर कोई बजा नहीं सकता, इस लिए पारंगत व्यक्ति प्रदेश में बहुत कम और कुछ गाँवो में ही पाए जाते हैं ,बाँसुरी की तरह प्रसंग के अनुरूप पारंगत व्यक्ति देव-कथा ,गीत के कुछ शब्द का प्रयोग

पिरि वाध्य के सूर में करता हैं ,जिनकी पहचान वही लोग कर सकते हैं ज्यों हरहंमेश भाग लेनेवाले होते है ,जैसे भवाड़ा ,भाया आदि प्रसंग में भगत -भूवा के साथ शौकिन नाच-गान करते हैं तो कुछ धुणते रहते हैं ।

**घांघली :**



यह वाध्य पीढ़ियों के साथ साथ नामशेष होता जा रहा है ,कहीं किसी गाँव में जहा बुजुर्ग हो और इस वाध्य बजाने के शौकीन हो ,उसी के पास ही इसके दर्शन हो सकते हैं । इस वाध्य पर कोई नाच-गान नहीं होता सिर्फ अकेला इन्सान मौज के लिए बजाता हैं ।

**घांघली वाध्य की रचना :**

उपर्युक्त तस्वीर से हमें ज्ञात होता है की बांस कि लकड़ी में दो नारियल आकार के लौकी के फल जोड़े जाते है ,इस लौकी को भोजन में नहीं लिया जाता । स्वाद में कड़वापन होने के कारण इस लौकी को अंदर खुला करके खेतों में पीने का पानी भरते है ,दूसरा जब किसी का देहांत होता है ,तो शब को भोजन -पानी खिलाने का रिवाज है इसको उसी में वह उपयोग में लेते हैं । घांघली बांस की लकड़ी में दोनों तरह लौकी जोड़कर लकड़ी में छेद देकर छोटी लकड़ी की मदद से गिटार की तार जोड़ देते है ,इस तार को अपनी उँगलियों से बजाता है और आनंद लुंटेते हैं ।



ढोल :



आदिवासी समाज में अन्य वाध्य की तरह ढोल (मादल) वाध्य का महत्व भी दिखाई देता है । लेकिन ढोल का उपयोग कम और खास प्रसंग में ही किया जाता है । होली के प्रसंग में जिनकी पूजा हलदी ,फूल के साथ भवानी माता के नाम से की जाती है ,शादी-ब्याह में इनका ज़्यादातर पहले मांग रहा करती थी ,क्योंकि पहले आदिवासी समाजों में बरातियों के साथ दूल्हा-दुल्हन के घर एक -एक रात बितानेवाली शादी होती थी । वर्तमान यह रस्म में बदल जाने से इस वाध्य का उपयोग कम होता जा रहा है । शादी-ब्याह में रातभर मनोरंजन के लिए इन वाध्य बजानेवालों को आमंत्रित किया जाता था । वे कुशलता का प्रदर्शन अलग-अलग रंग-रूप में करते थे ।

ढोल वाध्य की रचना :

यह वाध्य जंगल के पेड़ बियाना ,सीवण ,साग और कलम आदि पेड़ में से बनाया जाता है । इस वाध्य की लंबाई छत्तीस से चालीस इंच की होती है ,दोनों तरफ चमड़ा लगाया जाता है ,जिसे वह धोद कहते हैं । जिनका व्यास दश इंच की आसपास होता है । इस धोद पर हनी से बना मोम लगाया जाता है ,इसकी विशेषता यह वाध्य मृदंग जैसा अंदर से खुला आकार का होता है जिसे कम्मर पर बांधकर दोनों हाथों से बजाया जाता है ।

इसके अलावा बाँसुरी ,डमरू ,डेरा ,तमाशा के लिए तुनतुन ,तबला ,डफ़ली आदि साधनों का और जरूरत पड़ने पर अन्य उपकरणों का निर्माण करने की क्षमता अबुध ,निरक्षर ,पिछड़े हुए ,जंगल में रहनेवाले आदिवासी समाजों में भी कुशलता के साथ होता है ।

दूसरी और अपनी लोकबोली के शब्दों में लोकगीत ,शादी-ब्याह के गीत ,होली प्रसंग के गीत ,अक्षयतृतीया आदि गीतों -गानों की रचना खुद ही करता है और किसी धुन में ,लय में गाने की कला होती है ।

संक्षेप में अपनी संस्कृति ही अपनी पहचान (Identity) होती है । इनको सदाय -सर्वकाल जीवंत बनाए रखने का प्रावधान करना चाहिए । ऐसे कुशल कलाकारो को उनके हुन्नर के संदर्भ में अच्छा प्रशिक्षण दिया जाये ,नये रिधम से परिचित किया जाये तो वह एक अच्छी कलाकारी का प्रदर्शन कर सकते हैं ।

## संदर्भ सूचि :

- Dr.Koppar D.H. : Tribal Art of Dangs : Department of Museums Baroda-1971
- आदिवासी संस्कृति और विकास : डांग-आहवा , माहिती आयोग गुजरात राज्य-गांधीनगर
- विकास वाटिका : डांग जिले ,माहिती नियामक
- गुजरात की आदिवासी संस्कृति (१९९८) : डांग जिला-माहिती आयोग गुजरात राज्य-गांधीनगर
- डॉ.पवार बी.एल. : आदिवासियों में धर्मांतरण ,सोरठ प्रकाशन-जूनागढ़ (२०१५)